RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper
Available online at: www.rhimrj.co.in

महादेवी और प्रकृति

डॉ० किरण कुमारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची

पूर्व अवधारणा :–

प्रकृति मानव की चिरसंगिनी है जो उसे शारीरिक और मानसिक जीवन की शक्ति प्रदान करती है। प्रकृति अनन्त रूपों में हमारे समक्ष आती है। वह अपनी सुन्दरता से हमें चमत्कृत करती, अपनी विशालता से श्रद्धावान बनाती और अपनी भीषणता तथा विरूपता से हमें व्यथित–मथित, चकित और भीत करती हुई नाना रूपों में हमसे सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रकृति का यह विराट् और विविध रूप काव्य–क्षेत्र में अनुभूतियों का योग्य वाहक और प्रत्यायक बनता है।

प्रस्तावना :–

छायावादी काव्य में प्रकृति–सौंदर्य को मानव सौंदर्य का सहवर्ती तत्त्व माना गया है। वस्तुतः छायावादी कवियों के सामने प्रकृति–सौंदर्य के दो ही उपयोग थे कि या तो वे प्रकृति का वर्णनात्मक चित्र उपस्थित करें अथवा प्रकृति को चेतन सत्ता मानकर उसके सौंदर्य को अपनी प्रभावात्मक मनोदशा के अनुरूप स्वीकार करें। क्योंकि प्रकृति का सौंदर्य काव्य में परम्परा से उद्दीपन रूप होने के कारण मुक्तक या प्रक्षिप्त रूप में ही स्वीकृत था। यह बद्धमूल धारणा थी कि प्रकृति उद्दीपन का साधन और वातावरण के चित्रण की ही योग्यता रखती है। यह मुक्तक हो सकती है, महाकाव्य नहीं। उसमें मनुष्य की चेतना का अनाविल और संवेग उपस्थापन नहीं हो सकता, वह खण्ड अनुभूतियों की तात्कालिक व्यवस्था एवं किसी विशिष्ट हर्ष या विषादजन्य मनोभाव को पुष्ट करने का साधन मात्र है। छायावादी कवि ने अपने हृदय की व्यथा–कथा कहने के लिए ही प्रकृति को पुनः प्रतिष्ठित किया और इस युग में प्रकृति का कई रूपों में उपयोग हुआ है। कहीं वह सचेतन मानवी बनकर सम्मुख आई, कहीं स्वतंत्र चित्रण के केन्द्र के रूप में और कहीं मानव–मन में उठती सुःख–दुखात्मक अनुभूतियों के व्यक्तिकरण में सहायता देने के लिए।

परिकल्पना :–

महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में प्रकृति को उचित स्थान दिया है। उनकी विराट तक पहुँचने की साधना के मार्ग में प्रकृति सदैव उनके साथ रही है। उन्होंने छायावाद और प्रकृति के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है–''छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब–प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई। अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस–बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।''[1]

(i) स्पष्ट है कि महादेवी एक ओर प्रकृति में उस विराट् की छाया देखती हैं और दूसरी ओर अपनी छाया भी देखती हैं। महादेवी ही नहीं, छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने ऐसा ही किया है। प्रकृति इस प्रकार कवि के हृदय से भिन्न नहीं रह जाती। वह उसी के जीवन का अंश बनकर सम्मुख आती है। इसे यदि हम चाहें तो प्रकृति से तादात्म्य की संज्ञा दे सकते हैं। महादेवी के काव्य में यह प्रवृत्ति प्रचुरता के साथ उपस्थित है। एक कविता में वह संध्या से अपनी तुलना करती हुई कहती हैं–

''प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन!
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरूण अरूण, मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन।[2]

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved ISSN: 2349-7637 (Online)

संध्या का धुँधला विराग, अरूण सुहाग, रंगीले धन, साधों का सुनहलापन, विषाद का गहन तिमिर आदि से जीवन और संध्या का रूप साम्य पर आधारित चित्र काफी प्राणवान हो उठा है। पूरी कविता में अपने जीवन की छाया संध्याकाश में प्रतिबिम्बित है। इसी प्रकार 'मैं बनी मधुमास आली', 'मैं नीर भरी दुःख की बदली; 'विरह का जलजात' आदि कविताओं में उन्होंने प्रकृति से तादात्म्य किया है।

(ii) मानवीकरण महादेवी जी के प्रकृति–वर्णन की दूसरी विशेषता है। यों तो प्रकृति सजीव है और स्थान–स्थान पर उसके ऐसे चित्र मिल सकते हैं, परन्तु कुछ कविताएँ सच्चे अर्थों में हिन्दी–निधि कही जा सकती हैं। वसन्त की मधुरिमामयी रात्रि का यह चित्र देखें – धीरे–धीरे उतर क्षितिज से/आ वसन्त रजनी। तारकमय नव वेणी बन्धन,/शीशफूल कर शशि का नूतन/रश्मि–वलय सित धन अवगुण्ठन,/मुक्ताहल अभिराम बिछा दे/चितवन से अपनी। पुलकती आ वसन्त रजनी।''[3] उपर्युक्त पंक्तियों में वसंत की मधुरिम रात को नारी का रूप दिया है। वसंत रजनी की वेणी में तारे गुँथे हैं, शशि शीश–फूल है, रश्मियाँ ही भुज–बंध हैं और उन्होंने मेघों का अवगुंठन लगाया है। इस प्रकार सज–धज कर वह आकाश मार्ग से उतर रही है। महादेवी जी की वृत्ति विशेषतः प्रकृति के चेतन रूप में अधिक रमी है। मानवीकरण का अगला उदाहरण भी अतीव सुन्दर है। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

'रूपसि तेरा धन–केश–पाश!
श्यामल–श्यामल, कोमल–कोमल,
लहराता सुरभित केश पाश।
सौरभ भीना, झीना गीला/लिपटा मृदु अंजन–सा दुकूल;
चल अंचल से झर–झर झरते/पथ में जुगनू के स्वर्ण–फूल।''[4]

महादेवी के मानवीकरण में प्राकृतिक वस्तुएँ ही नहीं, कभी–कभी विराट् प्रकृति भी बंध जाती है। प्रकृति उनके आराध्य का भी प्रतिबिम्ब है और उनका भी। ऐसी स्थिति में भला वह अपने प्रियतम से कभी भिन्न कैसे रह सकती हैं? इस अभिन्नता के अनुभव के कारण ही वह कभी–कभी प्रकृति के उपकरणों से शृंगार करके अपने को प्रियतम के प्रति समर्पित करने की तैयारी करती दिखाई देती हैं–

रंजित कर दे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर
ला रजनीगंधा का पराग;
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार।''[5]

(iii) उनके रहस्यवाद की कोमलता का कारण यही प्रकृति है। 'लाए कौन संदेश नए घन', या 'मुस्काता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं', तथा ऐसी प्रकृति की सुषमा उन्हें प्रियतम का संदेश देनेवाली जान पड़ती है।' परन्तु कभी–कभी प्रकृति उन्हें उपदेश देती हुई भी दिखाई देती है, यथा 'कोकिला होती अन्तर्धान, चला जाता प्यारा ऋतुराज, असम्भव है चिर सम्मेलन, न भूलो क्षणभंगुर जीवन'। महादेवी के अधिकांश प्रकृति के चित्र उनके अपने भावों के ही प्रतिबिम्ब हैं, इन्होंने प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण बहुत कम किया है। डॉ0 विनय मोहन शर्मा का आक्षेप है कि–''महादेवी के काव्य में प्रकृति से परिचय पाना शहराती ड्राइंग रूम के फर्श पर वन–प्रांगण की हरी दूब को खोजने के समान अप्राकृत प्रयत्न है। इन्होंने फूलों के नाम सुन रखे हैं, पढ़े भी हैं; पर कौन फूल कब कहाँ खिलता है, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं रही।''

जो भी हो, उपर्युक्त पंक्तियाँ आक्रामक ज्यादा हैं और अतिरंजित भी बावजूद इसके इसमें सत्यांश की झलक मिलती है। यह सच है कि कवयित्री की दृष्टि में सम्पूर्ण प्रकृति ब्रह्म के वियोग में व्याकुल है, अतः अधिकांश चित्र इसी रूप के हैं। परन्तु जिस प्रकार ये चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, जिस प्रकार ऐश्वर्यमयी दृष्टि से प्रकृति को देखा गया है, जिस प्रकार रम्य खंड–दृश्य और पूर्ण चित्र अंकित किए गए हैं, उन्हें देखकर उनकी स्वतंत्र प्रकृति–चित्रण की सामर्थ्य पर सन्देह नहीं होता–''छायावाद तत्त्वतः प्रकृति के बीच में जीवन का उद्‌गीथ है, अतः कल्पनाएँ बहुरंगी और विविध रूपी हैं।'' महादेवी का यह अभिमत उनकी रचनाओं के अनुरूप ही है। उदाहरण स्वरूप हिमालय पर लिखे निम्न गीत को देखा जा सकता है जिसमें हिमालय पर मंडराते बहुरंगे बादलों का बड़ी पटुता से चित्रांकन किया गया है। इसमें रूप की रेखाएँ इतनी स्पष्ट और सजीव हैं, वर्णों का प्रयोग इतनी सधी तूलिका से किया गया है, बादलों की गति का चित्र इतना सजीव है कि सारा दृश्य प्रत्यक्ष हो उठता है–

'कुछ पिंग अरुण, कुछ सित श्यामल

कुछ सुख चंचल, कुछ दुःख मंथर
फैले तम से कुछ तूल विरल,
मंडराते शत–शत अलि बादल।'[6]

(iv) प्रकृति के उपकरणों को उपमानों के रूप में प्रयुक्त करने की परम्परा काफी पुरानी है। महादेवी ने भी उसका अनुगमन किया है पर एक विशिष्ट मौलिकता के साथ। इनके उपमान नवीन हैं जो उनकी सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं। मानव अश्रुओं को 'आँख का फूल', नक्षत्रों को 'नभ की दीपावली या तारक बाला' कहना इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। उनके उपमान अधिकतर पावस और बसन्त से लिए गये हैं। प्रभात, रात, संध्या के तो उपकरण ग्रहण किये गये हैं पर दोपहरी का एक भी चित्र उनके काव्य में नहीं मिलता। इन दृश्यों के अंकन या इनके उपकरणों को भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में महादेवी ने वैभव विलास की दृष्टि रखी है। इस वैभव–विलास की दृष्टि का औचित्य प्रतिपादित करते हुए विश्वम्भर मानव कहते हैं कि–''हमारी साधिका ब्रह्म की सुहागिन है। उस महान ऐश्वर्यशाली की प्रेमिका के लिए चाँदी, सोना, मोती, प्रवाल, नीलम, पुखराज सामान्य वस्तुएँ न होंगी तो किसके लिए होंगी।'' सचमुच इन वस्तुओं के सहारे प्रकृति के उपकरणों को उन्होंने और भी सुषमामय बना दिया है।

(v) कबीर आदि सन्तों की तरह महादेवी प्रकृति को ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग में व्यवधान नहीं मानतीं। वह तो उन्हें अत्यन्त प्रिय है क्योंकि उसी के माध्यम से उन्होंने प्रिय की झलक पायी है, वही प्रेम के उद्दीपन में सहायक हुई है। इतना ही नहीं उन्हें सूफियों के समान प्रकृति अपनी ही तरह ब्रह्म की प्रेमिका प्रतीत होती है। उन्हें लगता है जैसे पुष्प अपने विस्फारित नेत्रों से किसी की प्रतीक्षा करते हैं। अंधकार बिजली का दीप बालकर किसी को खोजता है, पवन अपने प्रिय से वियुक्त होकर दीर्घ श्वास छोड़ रहा है। अन्य कवियों के सदृश उन्होंने भी प्रकृति का उद्दीपनात्मक चित्रण किया है। हृदय की उल्लासमयी स्थिति में उन्हें प्रकृति–'बिखराती जाती तू सहास/नव तन्मयता उल्लास–लास' दिखाई देती है अथवा प्रिय के आगमन का संकेत देती हुई –

'मुस्काता संकेत भरा नभ। अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?'[7]

और पीड़ा के क्षणों में उन्हें तुहिन बिन्दुओं में अश्रु तथा प्रातः कालीन निष्प्रभ तारकों में अपने कान्तिहीन नेत्र दिखाई पड़ते हैं।

आरम्भ में जैसे जीवन के प्रति उनकी दृष्टि विस्मयभरी थी वैसी ही प्रकृति के प्रति भी थी। वह सीधे–सादे दृश्य–चित्रण में ही संतुष्ट हो जाती थीं अथवा प्रकृति की सुख–दुःखमयी स्थिति से प्रसन्न या विषादमग्न हो जाती थीं। उनकी वृत्ति तटस्थ दर्शक की थी, लेकिन धीरे–धीरे वह उसके भीतर डूबती गई हैं और प्रकृति उनकी अनुभूति का अंग बन गई है।

निष्कर्ष रुप में कहना चाहूँगी कि प्रकृति ने महादेवी के भावपक्ष का ही नहीं, कला पक्ष का भी शृंगार किया है। प्रतीकों द्वारा व्यंजना तो और कवियों ने भी की है, पर उसे अपने जीवन–दर्शन–ससीम का असीम से तादात्म्य के लिए प्रकृति को माध्यम बनाना उनकी अपनी विशेषता है। श्री पद्म सिंह शर्मा के शब्दों में–''हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवी जी ने प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को परिपूर्ण अभिव्यक्ति दी है और प्रकृति ने विराट् की प्रेमानुभूति के लिए उनके व्यक्तित्व को विशालता तथा भव्यता दी है। यही उनके लिए प्रकृति की सबसे बड़ी देन है।''

संदर्भ सूची :–

1. महादेवी संस्करण ग्रंथ 'महादेवी जी छायावाद', यशपाल, पृ0सं0–140, द्रष्टव्य सं0 त्रिभुवन सिंह, आधुनिक साहित्यिक निबंध, रत्ना पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 1998, पृ0सं0–363.
2. वर्मा महादेवी, यामा, पृ0सं0–203, द्रष्टव्य डॉ0 रामयतन सिंह, भ्रमर, आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1965, पृ0सं0–253.
3. वर्मा महादेवी, यामा, पृ0सं0–130, द्रष्टव्य डॉ0 रामयतन सिंह, भ्रमर, आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1965, पृ0सं0–239.
4. सं0 डॉ0 मंजू ज्योत्सना, डॉ0 नागेश्वर सिंह, डॉ0 बालेन्दु शेखर तिवारी, काव्य–सुधा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पटना, पहला संस्करण, 2003, पृ0सं0–79.

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)

5. पाठक वाचस्पति प्रसाद, निराला पन्त महोदेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1, बारहवाँ संस्करण, 1986, पृ0सं0–219.
6. वर्मा महादेवी, दीपशिखा, पृ0सं0–139–140, द्रष्टव्य डॉ0 रामयतन सिंह, भ्रमर, आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1965, पृ0सं0–252.
7. वर्मा महादेवी, नीरजा, पृ0सं0–86, द्रष्टव्य डॉ0 रामयतन सिंह, भ्रमर, आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1965, पृ0सं0–239.

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)